दूसरी परम्परा

समय और समाज की त्रैमासिकी

दिसम्बर–2013 फरवरी–2014 मूल्य ₹ 30

सुधा ओम ढींगरा

बेघर सच

''सच तो मैं जानता हूँ। वह सच मैं तुम से उगलवाना चाहता हूँ जिसे तुम मुझ से छिपा रही हो।'' संजय बड़ी कठोरता से बोला।

बचपन से उसकी आदत है जब भी कोई ऊँचा या सख्त बोलता है, वह पलटवार नहीं कर पाती, सिमट जाती है अपने में...सामने वाले की कठोर धरती पर खड़ी नहीं रह सकती, उसके पाँव जख्मी हो जाते हैं। धँसने लगती है अपने अन्दर, गहरे भीतर, भावनाओं के कुशन का सहारा लेने।

तुम क्या जानो...सच क्या है? किनारे पर खड़े हो कर सच नहीं जाना जाता, गहरे में डुबकी लगानी पड़ती है। तुम देह के भीतर की स्त्री तक पहुँचे ही कब हो जो सच जान सकते। सदियों से नारी के अंतर्मन में हरित दूर्वा पर बिखरी ओस की बूँदों सा सच, बारिश में भीगती धरा के बदन से उठती सोंधी-सोंधी खुशबू सा सच, कलियों का चटक कर फूल बनने सा सच पुरुष ने जाना ही कब है? उसका सच तो बस नारी का शरीर है। उसके भीतर क्या टूटता है, क्या जुड़ता है, क्या पनपता है, क्या बिखरता है, क्या फैलता है और उसकी सोच कहाँ-कहाँ की यात्राएँ करती है कब अनंत को छू कर असीम सुख की अनुभूति से विभोर होती है। उसकी परिकल्पनाएँ किस मनःस्थिति में इन्द्रधनुषी झूले पर झूलती हैं। कब-कब तितलियों के पंखों पर बैठ कर सतरंगी सपने बुनती हैं। नारी के अन्तःस्थल की गहराइयों तक जाने की कोशिश पुरुष ने कभी नहीं की, क्यों करे? नारी की भावनाओं व उसके संवेगों का महत्त्व ही क्या है...

''यह घर मेरा है। मैं सहन नहीं कर सकता कि मेरे घर में मेरे साथ रह कर तुम किसी और को चाहो...।'' वह कमरे में इधर से उधर तेजी से चक्कर लगाता हुआ गुस्से में बोल रहा था और वह अपनी ही दुनिया में खोई हुई, खामोश खड़ी थी।

तिनका-तिनका चुन कर नर-मादा नीड़ बनाते हैं फिर वह नीड़ सिर्फ नर का कैसे हो जाता है? मादा का अधिकार उस पर क्यों नहीं रहता? युगों से यही तो होता आया है...नारी घर की रानी, अधिकार तेरे पानी। पुरुष के मूड पर है कब किस रुख बैठे, कई बार एक ही झोंके में नारी के सारे अधिकार पानी में बहा दिए जाते हैं और वे भी नाली के पानी में।

हल्के बादामी रंग की दीवारों वाले मकान को वह घूम-घूम कर देख रही है। रीयल एस्टेट एज़ेन्ट मैरी ने उसे चाबियाँ देते हुए कहा ''मिस रंजना, हियर आर दी कीज ऑफ योर होम, टेक गुड केयर ऑफ दिस हेवन।''

मैरी का 'होम' शब्द पर जोर देना और उसे 'हेवन' कहना, वर्षों के आक्रोश से उसके भीतर पैदा हुए नासूर पर चोट पहुँचा गया। वहाँ टीस उठी, अथाह पीड़ा हुई। मैरी के सामने उसने अपने भावों को प्रगट नहीं होने दिया। वैसे भी पीड़ा दबाने की तो अब उसकी आदत हो चुकी है।

घर ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वह इस खाली मकान में आ गई है। बचपन से लेकर आज तक उसे मकान ही तो मिले हैं। लोग उन्हें घर कहते थे पर वह आज तक घर के अर्थ नहीं समझ पाई। अगर घर अपनों से बनता है तो अपने होते हुए भी उसे घर कब मिला...दूसरों के घरों में जगह बनाती रही!

विदेश में रहकर वैश्विक जीवन मूल्यों की पड़ताल सुधा ओम ढींगरा की पहचान है। साक्षात्कार लेने की कला में वे निपुण हैं। उनकी कहानियाँ प्रायः उस टूटन का जिक्र करती हैं जिसके कारण वर्चस्व संघर्ष या मानसिक बुनावट में बसे रहते हैं। हिन्दी कहानी में प्रवासी लेखन की वे एक बेहतरीन मिसाल प्रस्तुत करती हैं।
'बेघर सच' कहानी का बेघरपन सोच को झकझोर देता है। एक स्त्री के वजूद की खोज।

ई-मेल : sudhadrishti@gmail.com
मो. 0919.801.0672 (Cell)
919.678.9056 (Home)
101 Guymon Ct., Morrisville, NC.27560, USA.

पैतृक घर में भाइयों के अलग-अलग कमरे थे और वह दादी जी के साथ सोती थी। बड़ी सी हवेली में कमरों की भरमार थी। उसने भी अलग कमरा लेने की जिद की थी, तब पहली बार उसे महसूस हुआ कि यह घर उसका नहीं है, उसके भाइयों का है। परिवार के बजुर्गों ने उसे झिड़क दिया था ''अपने पति के घर जाकर अपनी मर्जी से कमरा ले लेना...और भाइयों से क्या मुकाबला करना, यह तो घर ही उनका है।''

''क्या यह घर मेरा नहीं है?'' वह रुआँसी हो गई थी।

''नहीं, यह घर तेरे भाइयों का है। पति का घर तेरा होगा।'' उसे तड़ाक सा उत्तर मिला था।

वह भी सबसे भिड़ गई थी, ''जिस घर में मेरा जन्म हुआ, वह घर मेरा नहीं और जिसको मैं जानती नहीं, पता नहीं वह कब मेरी जिन्दगी में आएगा और आएगा भी या नहीं, यह भी पता नहीं। कैसा होगा? कोई नहीं जानता। उस अनजान, अजनबी व्यक्ति का घर मेरा होगा। क्या कुतर्क है?''

''यह कुतर्क नहीं, वेदों-पुराणों में लिखा है।'' दादी जी ने बड़े दावे से कहा था और यहीं से उसका विरोध शुरू हो गया था। वह वे वेद-पुराण देखना चाहती थी जिनकी दुहाई देकर लड़कियों और स्त्रियों के साथ मनमानी की जाती है। वह नाराज थी, पुरुष ऐसा कहें तो उनका स्वार्थ समझ में आता है वे महिलाओं पर अधिकार जमाने के लिए ऐसे कुतर्क, तर्क की चाशनी चढ़ा कर देते हैं, पर महिलाओं का इस कुतर्क को मानना और दूसरी महिलाओं को उन्हीं बातों से प्रभावित करना, उसके किशोर मन की समझ से परे था।

माँ ने उसे आगोश में लेकर सीने से लगा लिया था। वह शांत हो गई थी। माँ ने बड़े प्यार से धीमी आवाज में कहा था-''मेरी रंजो इतना गुस्सा तेरे लिए ठीक नहीं। यही नारी का जीवन है।'' वह माँ को बताना चाहती थी, नहीं, नारी जीवन यह नहीं है। माँ ने उसके होंठों पर उँगली रख दी थी।

''जानती हूँ, आजकल तुम बहुत कुछ पढ़ रही हो, काफी कुछ सीख रही हो, मुझे खुशी है कि तुम समझदार हो रही हो। पर पहले पढ़-लिख कर अपने पाँव पर खड़ी हो जाओ, फिर हक की लड़ाई लड़ना। तुम्हें कमरा मिलेगा और जब तक मैं जिन्दा हूँ, यह घर तुम्हारा भी है। पति का घर भी कभी औरत का नहीं होता रंजो, वहाँ भी उसे दूसरे घर की, पराए घर की ही कहा जाता है।'' यह कहते हुए माँ बहुत उदास हो गई थीं। कहीं से एक काली-घनी बदली माँ की आँखों में बरस गई, उसके चेहरे और माथे पर उसके छींटे पड़ने लगे। माँ का दर्द, सारी पीड़ा वह उन बूँदों से महसूस कर रही थी।

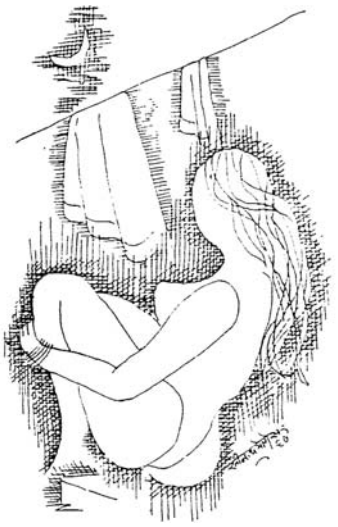

कुछ दिनों बाद उसे एक छोटा सा कमरा मिल गया। वह हैरान थी, माँ अपने लिए कभी किसी से कुछ भी नहीं मनवा सकी और उसे कमरा उसने कैसे दिलवा दिया। घर में कई सत्ताएँ थीं। पितृसत्ता, दादीसत्ता और पिता जी की चाची। उनकी सत्ता। संयुक्त परिवार था। इतनी सत्ताओं को मनाना आसान नहीं था। कैसे किया होगा माँ ने यह सब। बचपन से अब तक उसने माँ को उन सत्ताओं के आगे झुके हुए चक्करघिन्नी सा घूमते ही देखा है। कुछ माँगते या कहते नहीं देखा। माँ की सारी इच्छाएँ और भावनाएँ कहीं गुम हो गई थीं या समाप्त हो चुकी थीं।

युवावस्था तक आते-आते वह माँ की इस दशा का कारण समझ गई थी। माँ दहेज नहीं लाई थी। दादा और नाना दोनों आर्य समाजी थे और बिना दहेज लिए-दिए बच्चों की शादी की थी। दादी और चाची दहेज चाहती थीं। दोनों परिवारों में पिता जी अकेले बेटे थे। दादा और चाचा के आगे तो वे बोल नहीं सकीं बस पहले दिन से माँ को तंज बाणों से ऐसा बींधा कि माँ के भीतर की औरत घायल हो कर गिर पड़ी। उम्र भर सिर नहीं उठा सकी।

शादी के समय रंजना के नाना जी ने बड़े गर्व से बताया था कि उनकी बेटी होम साइंस में एम.ए. है और ललित कलाओं में भी प्रवीण है। पर व्यापारी परिवार में किसी ने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया। दहेज के नाम पर वे एक सितार, तानपूरा और हारमोनियम लाई थी। जिन्हें पुराना सामान रखने वाले स्टोर में रख दिया गया था। सितार, तानपूरा के तार टूट चुके थे और हारमोनियम माँ की तरह स्वर खो चुका था। उसने कई बार उन्हें वहाँ से निकालने की कोशिश की तभी दादी और चाची जी अपशब्दों का मंत्रोचारण शुरू कर देतीं– ''रंजो, चल रख इन्हें वापिस। तुम कंजरों की बेटी नहीं। यह शरीफों का घर है। यहाँ कंजरखाना नहीं चलेगा।'' इससे पहले कि बात और बढ़े माँ उससे वे साज ले कर स्टोर में रख देती। माँ की डबडबाई आँखों की ओर देख कर वह चुप हो जाती।

एक दिन माँ बहुत दुखी थीं। रंजना ने उन्हें अपना दर्द बाँटने के लिए, बार-बार आग्रह किया था। वह माँ का दुःख जानना चाहती थी। माँ ने उसे बताया–''पुरानी यादें कभी-कभी तंग करती हैं। आज भी यादों के पार्क में घूम रही हूँ। तुम्हारे नाना जी बहुत आदर्शवादी थे। उन्होंने मुझे खूब पढ़ाया-लिखाया। पर वे व्यवहार कुशल नहीं थे। मेरी शादी ऐसे परिवार में कर दी जहाँ धन-धान्य की तो भरमार है पर मेरी शिक्षा, कला, सोच और विचारों का घर के किसी भी मेम्बर के दिल में कोई स्थान नहीं है। मैं तेरी शादी बहुत देख भाल कर करूँगी। लड़का वह ढूँढूँगी जो तुझे प्यार करे, तेरे गुणों, तेरी रुचियों की कद्र करे। पति-पत्नी के साथ-साथ तुम दोनों एक दूसरे के साथी बन सको।'' कह कर उनके चेहरे पर घनघोर घटा छा गई थी। उसे लगा यह घटा बस बरसने ही वाली है। उसने माँ की दाईं गाल चूम ली थी। माँ नन्ही कली सी मुस्कराने लगी थी।

संजय को माँ ने ही पसंद किया था और

शादी के बाद वे रंजना की सुखी घर-गृहस्थी देखने पिता जी के साथ उसके पास आई थीं। रंजना ने उन्हें तरह-तरह की कला प्रदर्शनियाँ, म्यूजियम, ब्रोडवे शो दिखाए, उसे पता था कि माँ को इन सबका शौक है। एक मूर्तिकला की प्रदर्शनी से बाहर निकल कर माँ ने रंजना को सड़क किनारे एक पत्थर दिखा कर कहा कि उन्हें ऐसा पत्थर चाहिए। रंजना और उसके पिता जी यह सुन कर भौचक्के से रह गए थे। उसने माँ की ओर देखा तो उनके चेहरे पर आत्मविश्वास का ओज और दृढ़ता थी। वह अपनी माँ की बात को टाल नहीं सकी। उसने वैसा ही पत्थर खरीद कर घर के गैराज में रख दिया था। वह माँ की मंशा समझ गई थी। टूल्स शॉप से पत्थर तराश कर मूर्ति बनाने के सब औजारों की किट भी ले आई। वह किट जब उसने माँ के हाथों में दी तो माँ की आँखों ने आशीर्वाद का कवच उसे पहना दिया।

पहली बार माँ की अद्‌भुत प्रतिभा के दर्शन उसे और उसके पिता को हुए थे। कुछ दिनों में माँ ने उस पत्थर को एक औरत की मूर्ति में तराश दिया था। रंजना और संजय बार-बार उस मूर्ति को देखते, फिर माँ की ओर अविश्वसनीय नजरों से देखते। रंजना के पिता ने विश्वास दिलाया कि यह मूर्ति उनकी माँ ने ही बनाई है और गर्व से यह भी बताया कि रंजना की माँ गाती भी बहुत बढ़िया है। पत्थर को तराशते हुए वे कभी भजन, कभी गीत और कभी गजल गाती थीं और उसके पिता एक-एक पल का सुनयना देवी के साथ रसास्वादन करते रहे। रंजना खुश थी, चाहे इस उम्र में ही सही माँ के भीतर दम तोड़ चुके कलाकार ने सिर तो उठाया। पिता जी ने माँ की तरफ ध्यान तो दिया। उस दिन के बाद वह माँ को स्टोन नर्सरी ले जाती और माँ तरह- तरह के पत्थर चुन लेती। उसके मंदिर के राधा-कृष्ण माँ के हाथों की ही देन है।

सुनयना देवी भी मूर्तिकला के प्रति अपनी प्रतिभा को बाहर निकलता देख कर हैरान थीं। हालाँकि वे अन्य कलाओं में प्रवीण थीं, पर अब वे कलाएँ वर्षों से उनकी बेरुखी और उदासीनता से नाराज होकर कहीं भीतर ही तम्बू गड़ाए बैठी थीं, बाहर निकलने का नाम नहीं ले रही थीं। रंजना को पेंटर नीरा यादव की याद आई, जिन्हें वह हिन्दू मंदिर में मिली थीं जिनके चित्रों की प्रदर्शनियाँ विदेशी पेंटरों के साथ होती हैं। बनारस में उन्हें अपनी इस प्रतिभा से परिचय भी नहीं था और सात समन्दर पार की धरती ने ब्रश, कैनवस और रंगों के प्रति ऐसा मोह जगाया कि आज वे एक प्रतिष्ठित चित्रकार बन गई हैं। विदेशी परिवेश और समाज के प्रोत्साहन से वे एक बेहतरीन कलाकार बन गई हैं। रंजना अक्सर सोचती कि उसकी माँ और नीरा जी लगभग एक ही समय और उम्र में थोड़ी छोटी बड़ी हैं। उस समय की जाने कितनी कलाकार सामाजिक और पारिवारिक मर्यादा और रूढ़ियों की बलि चढ़ी होंगी।

माँ द्वारा बनाई गई एक मूर्ति, आज भी उसके पास सुरक्षित है जिसमें एक महिला भँवर में डूब रही है और उसने दोनों हाथ ऊपर उठा कर अपनी बच्ची को बचाया हुआ है...माँ का डर और बच्ची को बचाने के भावों को अद्‌भुत तरीके से माँ ने तराशा हुआ है। उसकी माँ ने मरने तक उसे जीवन के हर भँवर से बचाए रखा। वह अक्सर सोचती, वे कौन सी माँएँ हैं जो अजन्मी बच्चियों को मार देती हैं, उसकी माँ तो जीती ही उसके लिए थी। माँ के मरने के साथ ही, वह कमरा, जिसे उसकी माँ ने उसकी शादी के बाद भी उसी का कमरा कह कर सजा रखा था, और घर दोनों छूट गए...भाइयों ने माँ की बनाई उन मूर्तियों को, जो पिता जी अपने साथ कपड़ों में लपेट कर स्वदेश ले गए थे, घर का कूड़ा करकट समझ कर उठा कर फेंक दिया। उन्हें बचाने के लिए पिता जी जिंदा नहीं थे। घर भाइयों का था।

उसके पति ने भी मूर्तियों को उनकी जगहों से अलग कर जमीन पर पटकना शुरू कर दिया था, जिन स्थानों पर सजी-धजी वे हर मेहमान का स्वागत करतीं और मेहमान उनकी प्रशंसा करते कहते–''यह अद्‌भुत खजाना कहाँ से ढूँढ़ा है डॉ. संजय। दीज स्कल्पचरज मस्ट बी वैरी एक्सपेंसिव।'' और वह बड़े गर्व से कहता–''यह रंजना की खोज है। मूर्तिकला उसका पैशन है। रंजना की मम्मी जी मूर्तिकार थीं।'' और उसी खोज को जिस पर गर्व था संजय को, उठा फेंका। अलग-अलग प्रदर्शनियों से खरीदी गईं वे मूर्तियाँ रंजना की तरह ही बेघर हो गईं। वह घर तो संजय, उसके पति का था।

शादी के समय दादी ने कहा था-''रंजो अब तुम्हारा अपना घर होगा, जिसमें तुम और तुम्हारा पति रहेंगे।'' उसने भी सोचा, चलो अब अपने घर को वह अपनी इच्छानुसार सजाएगी, संवारेगी।

भ्रमों को हम ही पालते-परोसते हैं और एक दिन ये भ्रम ही हमें निगल जाते हैं।

पति संजय स्टेट यूनिवर्सिटी न्यूयार्क में पी-एच.डी. कर रहा था और उसे भी वहीं पी-एच.डी. में दाखिला मिल गया। साथ ही खुल गया था, सपनों के संसार का द्वार। यह देश तो है ही लैंड ऑफ ऑपरचुनिटी। सपने और कल्पना जब मिल जाते हैं तो मानव मन जीवन के अनछुए पहलुओं को छूकर एक पल में कोसों दूर का सफर तय कर आता है। रंजना के साथ भी ऐसा ही हुआ। कलाओं के प्रति रुचि शायद उसे माँ से मिली थी। देश में तो पारिवारिक परिवेश ने रोके रखा या उसे अपनी इस रुचि को समझने का मौका ही नहीं मिला। विदेश के खुले स्वछंद वातावरण में उसका शौक पनपा। वह तरह-तरह की कला प्रदर्शनियों में जाने लगी। उसका मन सबसे अधिक मूर्तिकला के म्यूजियम और प्रदर्शनियाँ देखने में रमता। विशेषकर चीनी, जापानी और फ्रांस की मूर्तिकला की वह प्रशंसक हो गई। जो मूर्ति उसे बहुत पसंद आती वह उसे खरीद लेती और घर के कोने या दीवार के साथ सजा देती। पेरिस के एक भारतीय मूर्तिकार एम. सदोष की एक मूर्ति ने उसे बाँध लिया था...शीर्षक था 'होमलेस आइज।' घुँघराले बाल, बड़ी-बड़ी आँखें, घर को तलाशती नजरें...एक पूरी कहानी उस मूर्ति ने कह दी थी। अजंता-एलोरा की मूर्तियाँ भी ऐसी ही कहानियाँ कहती होंगी, पढ़ने और समझने वाले चाहिए। वह सोचती, अब जब वह देश जाएगी तो अजंता-एलोरा और खुजराहो की मूर्तियों में छुपी कहानियों को पढ़ेगी। जितना वह इस कला के करीब जाती गई, उतना ही उसे इस कला में रस आने लगा। वे मूर्तियाँ उसे बहुत रोमांचित करतीं, जिनसे उसकी परिकल्पना को उड़ान भरने का मौका मिल

जाता और वह उनमें कहानी तथा कभी कविता को ढूँढ़ लेती। वह कहानियाँ और कविताएँ लिखने लगी। वह उन मूर्तियों के आकाश में उस छोर तक उड़ती जहाँ मूर्तिकार ने अपनी कल्पना को छोड़ा होता...

वह संजय से अपने भाव, कथाएँ, अपने जज्बात सब साझा करना चाहती, पर उसे उसकी बातों में कोई दिलचस्पी नहीं होती थी। वह बस पति ही बना रहता, उसका दोस्त कभी नहीं बन पाया और वह धीरे-धीरे अपनी दुनिया में डूबती चली गई।

पी-एच.डी. पूरी कर दोनों अलग-अलग कम्पनियों में वैज्ञानिक बन काम करने लग गए। दस साल उस बदली की तरह निकल गए जो उमड़-घुमड़ कर रोमांस रचाती है और बिन बरसे ही उड़ जाती है। पढ़ाई के दौरान उन्होंने बच्चे का सोचा नहीं, अब बच्चा उनके लिए नहीं सोच रहा। रंजना की गोद सूनी है।

उनकी दिनचर्या में कोई रस नहीं, बस एक रूटीन में बँधी ढर्रे पर चल रही जिंदगी थी। दरअसल संजय का काम के अलावा और कोई शौक नहीं था। अन्य भारतीयों व स्थानीय लोगों की तरह उसे गोल्फिंग, बोलिंग, तैरने, सर्फिंग, पिकनिक, पार्टियाँ देना और पार्टियों में जाना कुछ भी अच्छा नहीं लगता। वह रंजना के साथ कभी मूवी थियेटर में मूवी देखने भी नहीं गया। यह सब उसे समय की बर्बादी लगती। हाँ, कभी-कभी वह अपने दोस्तों के साथ स्पोर्ट्स बार में बॉसकट बॉल, बेस बॉल की गेम्ज देखने और बीयर पीने चला जाता। रंजना के साथ वह ऐसा कोई भी मनोरंजक पल नहीं गुजारता था।

दोनों काम से घर आते, संजय टीवी देखता और उसके शरीर से खेलता हुआ सो जाता। वह मानसिक सामंजस्य के लिए सहारा तलाशती। उसे पता चल गया था संजय एक अति महत्त्वाकांक्षी और वर्कोह्लिक व्यक्तित्व है। कम्पनी में वह सबसे ऊँचे पद पर पहुँचना चाहता था, इसलिए सातों दिन काम करता। घर उसके लिए रात्रि स्थली था और वह सिर्फ भोग्या। रंजना इंसान है, उसका अपना व्यक्तित्व है, अस्तित्व है, सोच है, समझ है। वह भी कुछ चाहती है, इससे उसको कोई सरोकार नहीं था। बस वह पति है, इतना वह बखूबी जानता था।''

संजय जैसा है उसने उसे वैसा ही स्वीकार किया हुआ था। रंजना अपनी मित्र मंडली के साथ गीत-संगीत के शो में जाती, कला प्रदर्शनियों का लुत्फ उठाती, जीवन के शून्य को भर रही थी। उसे संजय से कोई गिला नहीं था। स्वभाव से वह बहुत मस्त मौला और बिंदास थी।

'होमलेस आइज' पर उसने एक पत्र मूर्तिकार एम. सदोष को लिखा और उस मूर्ति को देख कर अपनी कल्पना से बनाई कहानी को शब्दों का बाना पहना कर भेजा था। एम. सदोष इतना प्रभावित हुआ कि उसने वह कहानी अपनी मूर्ति के चित्र के साथ पेरिस की एक पत्रिका में छपवाई। यहीं से दोनों की दोस्ती शुरू हुई। ई-पत्राचार, फोन वार्तालाप से वे अक्सर बातचीत करते। संजय को वह खुश हो कर सब बातें बताती। संजय कभी ध्यान देता, कभी नहीं भी देता।

जीवन की एकरसता और नीरसता से वह उकता गई थी। बेचैन रहने लगी थी। उकताहट ही उसकी बेचैनी का कारण थी। वह जो कविताएँ लिखती, सदोष को पढ़ने भेजती और उन कविताओं पर उसने कई मूर्तियाँ बनाईं। वह उनके चित्र भेजता। संजय को वह चित्र दिखाती पर वह तो कम्पनी के प्रेजिडेंट की कुर्सी देख रहा था, उसे वह सब दिखाई नहीं देता था।

रंजना कम्पनी के काम से कैलिफोर्निया गई हुई थी, वहाँ की आर्ट गैलरी में उसने इंटरनेशनल आर्ट फेस्टिवल में लगी कई प्रदर्शनियाँ देखीं और एक प्रदर्शनी में उसे सदोष की एक मूर्ति 'इन द आइज ऑफ टाइम' नजर आई...जिसके साथ नोट लिखा हुआ था कि समय ने स्त्री को पुरुष से बेहतर और मजबूत देखा है। समय देख रहा है कि बलात्कार भी उसकी शक्ति को कम नहीं कर पाता और वह युग-युगांतर से डटकर पुरुष का मुकाबला कर रही है। मूर्ति को जिस तरह तराशा गया था, एक-एक कट मूर्तिकार के हाथों और उँगलियों की करामात दर्शा रहा था। समय और औरत के भावों को तराश में जिस तरह से उकेरा गया था, अकल्पनीय था। स्त्री की भावनाएँ दर्शाने के लिए उसके शरीर और चेहरे पर कई जगह बड़े हल्के हाथ से मूर्ति की टोनिंग की गई थी। रंजना की कल्पना ने आगे की कहानी लिखनी शुरू कर दी...। दुनिया में सबसे पवित्र अगर कोई है तो वह नारी है। पुरुष बीज डालता है तो वह नौ महीने बाद उसे फल देकर साथ की सारी गन्दगी बाहर निकाल देती है। हर माह प्रकृति उसका भीतरी आँगन स्वच्छ कर देती है। उसे तो कोई पुरुष मैला कर ही नहीं सकता। प्रकृति ही उसका साथ देती है। वह तो गंगा की तरह पवित्र है। अगर वह बलात्कार और उसके बाद के डर को अपने भीतर से निकाल दे तो वह शक्ति है। अपनी इस ताकत को नारी स्वयं भी पहचान नहीं पा रही, वह तो कभी मैली होती ही नहीं। कुदरत ही उसे साफ कर देती है। वह काफी देर तक खड़ी उस मूर्ति को देखती रही। फिर उसने उसे खरीद लिया और वहाँ के मैनेजर को अपने घर का पता देकर, उस मूर्ति को जहाज से भिजवाने की पेमेंट करके, वह वहाँ से बाहर आई ही थी कि संजय का गुस्से से उबलता फोन आया...

''तुमने अपने यार से मिलने जाना था तो मुझ से झूठ क्यों बोला कि तुम कम्पनी के काम से जा रही हो। तुम्हें पता है मुझे झूठ से सख्त नफरत है।'' इससे पहले वह कुछ कहती संजय ने फोन बंद कर दिया।

संजय की आदत है, गुस्से में वह अंट-शंट बोल कर फोन पटक देता है। फिर कुछ देर बाद माफी माँग लेता है। रंजना ने उसकी इस बात को गंभीरता से नहीं लिया। सोचा जा कर सब स्पष्ट कर देगी। संजय को गलत-फहमी हुई है।

रंजना की सोच गलत थी। बात गलतफहमी से कहीं आगे निकल गई थी। रंजना के घर पहुँचते ही संजय का वर्बल डायरिया शुरू हो गया, रुकने का नाम ही नहीं ले रहा था। वह उसे यूएसए नैशनल न्यूज पेपर दिखा-दिखा कर पूछ रहा था, ''देख तेरा यार भी वहाँ था, जिन दिनों तुम वहाँ थी। तुमने जान बूझ कर उन दिनों ऑफिस का काम रखा। तुमने मुझे धोखा दिया। तुम दोनों दोस्त नहीं, दोस्ती से आगे बढ़ चुके हो, तभी तुमने मुझ से झूठ बोला। तुम उसे चाहती हो, बस मुझ से छिपा रही हो। तुम्हें मानना होगा कि तुम उसे चाहती हो...मानती क्यों नहीं, कहो।'' वह न्यूज पेपर

में छपे विज्ञापन को गौर से देख रही थी कि सदोष कैलिफोर्निया में था और उसे पता भी नहीं। पिछले एक महीने से उनकी बात नहीं हुई, वह जिस प्रोजेक्ट पर काम कर रही थी, उसने उसे अत्यधिक व्यस्त किया हुआ था। अगर सदोष यहाँ आए होते तो वे उसे जरूर बताते। चाहे एसएमएस ही करते कि वे यहाँ आ रहे हैं।

''बोलती क्यों नहीं तुम उससे प्यार करती हो...मैं तुम्हारे मुँह से सुनना चाहता हूँ।'' संजय का एकतरफा शाब्दिक युद्ध समाप्त होने का नाम ही नहीं ले रहा था। माँ के साथ भी उसने दादी और चाची का एकतरफा शाब्दिक प्रवचन बचपन से सुना है। चिढ़ आती है उसे इस तरह के व्यवहार से। वह शायद अपनी माँ की तरह सहनशील नहीं जो एकतरफा आक्षेप सहती रहे।

प्यार, पुरुष के लिए बस एक शब्द है और स्त्री के लिए ब्रह्माण्ड। ब्रह्माण्ड के दर्शन वह बस एक बार ही करती है और पूरी निष्ठा से अन्तःस्थल की गहराइयों से उसमें समा जाती है। काम के बाणों को भी प्रेम की प्रत्यंचा पर चढ़ा लेती है। आधुनिकता का आवरण ओढ़ कर नारी कितनी भी मॉडर्न हो जाए पर भीतर की स्त्री अपने प्राकृतिक गुण सँजोए रखती है। मीरा ने भी प्रेम किया और राधा का भी प्रेम था, सीता ने भी प्रेम किया और उर्मिला का भी प्रेम था। प्रेम का झरना कितने रूपों में फूटता है, कितने रास्तों से गुजरता है, कितने स्वरूप धारण करता है पर उसे किसी भी परिभाषा में नहीं बाँधा जा सकता। हरि कथा सी प्रेम की व्याख्या भी अनंत है। नारी के भीतर तो प्यार के झरने बहते हैं, माँ, बहन, बेटी, पत्नी, प्रेमिका बन बस सब पर प्यार ही लुटाती है। पुरुष, प्रेम और नारी के इस सम्बन्ध को कभी समझना नहीं चाहता। तभी हर युग में अहल्या और सीता दोनों मिलती हैं।

संजय, रंजना और सदोष को सिर्फ दो 'देहों' के रूप में सोच रहा है। रंजना की अन्तरात्मा में पीड़ा बूँद-बूँद टपक रही है, दस वर्षों में संजय ने उसे जाना ही नहीं। अगर उसे सदोष से मिलना होता तो पेरिस जाना उसके लिए क्या मुश्किल था? सदोष भी यहाँ आ सकते थे। वह स्वयं सदोष की प्रशंसिकाओं की भीड़ में खड़ी होने को तैयार नहीं। उसने सुन रखा है कि उसकी प्रेमिकाओं की एक लम्बी कतार है। किन्तु स्वयं उसके लिए प्रेम का अर्थ केवल शरीरों का मिलन नहीं है...प्रेम एक अनुभूति है...आवश्यक नहीं कि उसकी अभिव्यक्ति शब्दों में की जाए...वह अपनी अस्मिता के साथ उसकी कला को निहारती है। उसकी कला की मीरा सी दीवानी है। मूर्तियों की तराश और उससे पैदा किए भावों से प्रेम करती है, जो नारी के भीतर की बंद गुफाओं को खोलते हैं...नारी की अंतर्वेदना को मूर्त करते हैं। नारी के अंगों को नहीं, भावनाओं और संवेगों को रूप देते हैं...यह सब वह संजय को कैसे समझाए?

संजय समझने-समझाने से परे की परिस्थिति में आ चुका था, वह रंजना के मुँह से सच सुनना चाहता था। सीता फिर दोषित हुई। युग बदलते हैं पर पुरुष का नारी को दोषित करना नहीं बदलता। गुस्सा और आक्रोश रंजना के दाएँ-बाएँ खड़े हो गए। उसने दोनों को काबू में रख कर कहा–''हाँ मैं उसे प्यार करती हूँ...।'' उसे लगा कि मीरा को जहर का प्याला पीने के लिए दिया गया और उसने वह पिया।

यह घर मेरा है...कहते हुए संजय ने मूर्तियों को तोड़ना शुरू कर दिया, रंजना उन्हें बचाने लगी। जैसे माँ अपने बच्चों को पिता से पिटते समय बचाती है। दीवार पर लगी चीनी आर्ट की एक मूर्ति जो एक बहुत बड़े चौकोर महीन पत्थर पर बनी हुई थी, चीन के एक गाँव को पत्थर पर तराश कर चित्रित किया गया था और रंग भर कर सुंदर स्वरूप दिया गया था। संजय ने उतार कर फेंक दी और वह टुकड़े-टुकड़े हो गई। उसकी माँ द्वारा बनाई मूर्ति को संजय ने जानबूझ कर जमीन पर फेंक दिया, उसकी एक बाजू टूट गई। रंजना के अंदर कुछ टूट गया। माँ के हाथों से बनाई वह मूर्ति, माँ का स्वाभिमान था। माँ की असीम यादें, उसकी वेदना, एक कलाकार का गुपचुप इस दुनिया से चले जाने का दर्द, सब कुछ वह माँ की उस अंतिम मूर्ति में देखती थी। मूर्तियों को बचाते-बचाते उसकी पीठ, बाजू और हाथों पर नील पड़ गए। घुटने और टाँगें दुखने लगीं। पता नहीं कहाँ-कहाँ उसके चोटें आईं। रंजना ने सब मूर्तियों को बड़े प्यार से सँभाल कर वैन में रखा, टूटी हुई मूर्तियाँ भी उठा लीं। उसने माँ द्वारा बनाए मंदिर के देवताओं को चादर में समेटा। अपना पर्स उठाया और बिना कुछ कहे इस खाली मकान में आ गई।

मकान में वह घूम रही है, अब वह घर बन जाएगा, उसका अपना घर, जिसमें वह अपने अस्तित्व, व्यक्तित्व, अस्मिता के साथ एक इंसान के रूप में रहेगी। इसका एहसास ही वातावरण को खुशनुमा बना रहा है। उसके वजूद की खुशबू भी आस-पास हवा में लहराने लगी, जिसे वह कभी महसूस ही नहीं कर पाई थी। उसने मूर्तियाँ कमरे में रख दी हैं, अब हर मूर्ति अपनी कहानी कहेगी। कितनी कहानियाँ उसके साथ होंगी।

किशोरावस्था के कई मासूम क्षणों में उसने सोचा था कि बड़ी होकर वह अपना घर बनाएगी और माँ को अपने साथ रखेगी और कहेगी–''माँ, जी ले अपनी जिन्दगी अपनी कला के साथ। यहाँ कोई तुम्हें रोकेगा-टोकेगा नहीं।''

आज घर तो उसका है पर माँ नहीं। कुछ पल वह आँखें बंद किए बैठी रही।

गोधूलि वेला की परछाइयाँ घर में पसरने लगीं। थोड़ी देर बाद उसने आँखें खोलीं। उसका चेहरा चमक रहा था। वह माँ का ही तो प्रतिरूप है। उसकी शिराओं में माँ ही तो बहती है। माँ उससे दूर कहाँ, उसके साथ है। वह अपना और माँ का दोनों का जीवन जिएगी। इस खूबसूरत सोच ने उसके भीतर स्फूर्ति और ऊर्जा के द्वार खोल दिए।

उसकी नजरों ने घर की दीवारों और कोनों को परखना शुरू किया। अपने बेघर हुए सच और मूर्तियों की सुरक्षा के लिए उसकी दृष्टि चारों ओर घूम रही थी। एक दीवार पर उसकी नजरें टिक गईं। शीशे के अलग-अलग आकार के टुकड़ों से दीवार पर मॉडर्न आर्ट की कृति का स्वरूप बिल्डर ने दिया हुआ था। वह धीरे से उठी और उस दीवार के पास गई। पीड़ा से उसका पूरा बदन कराह उठा। आत्मसम्मान के तेज से चमकता उसका चेहरा शीशे के उन टुकड़ों में दमकने लगा। वह एकटक उन्हें देखती रही। उसे लगा वह पूरे ब्रह्मांड में समा गई है...

●